इरीना याकोव्लेवा

सचित्र जीवाश्मकी

रादुगा प्रकाशन

इरीना याकोव्लेवा

सचित्र जीवाश्मिकी

अनुवादक: योगेन्द्र नागपाल
चित्रकार: रुबेन वर्शामोव

रादुगा प्रकाशन
मास्को

पीपुल्स पब्लिशिंग हाउस (प्रा.) लिमिटेड
५ ई, रानी झांसी रोड, नई दिल्ली-११००५५

प्राचीन वन की अश्मीभूत पत्तियां।

उष्म सागर कब का सूख चुका है, पर यह मछली आज भी पत्थर में तैरती लगती है।
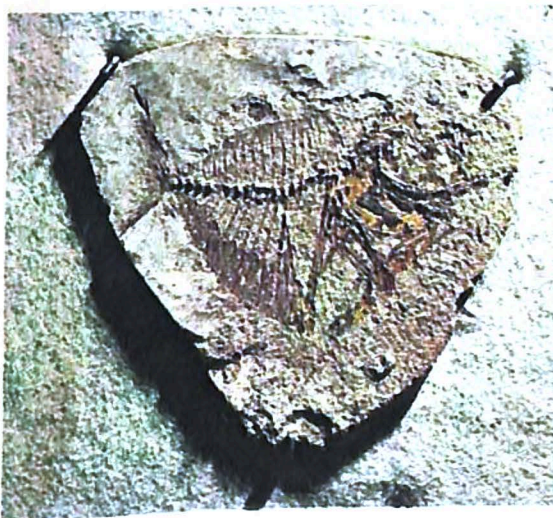
जीवाश्मिकी – प्राचीन जीवों का विज्ञान

संसार के सभी जनगण की लोककथाओं में अजीबोगरीब जीवों का उल्लेख आता है। कहीं अजदहे का, तो कहीं उड़ते सांप का, कहीं समुद्री नाग और कहीं ऐसे भीमकाय पक्षियों का जो हाथी को यों उठा ले जाते हैं, जैसे कि वह छोटी सी बिल्ली हो। ऐसे विभीषण जानवर आज न किसी जंगल में पाये जाते हैं, न किसी दूर-दराज़ के देश में और न ही सागर-महासागर की गहराइयों में। तो फिर क्या इन लोककथाओं पर विश्वास किया जा सकता है? हां, किया जा सकता है! ऐसा वैज्ञानिकों का कहना है। वे जानते हैं कि लोककथाओं के डरावने जानवरों जैसे जीव पृथ्वी पर सचमुच रहते थे, पर बहुत पहले, जब मनुष्य नहीं था।

यदि वे आज जी उठते...

जरा कल्पना करो कि आज तुम्हारे शहर में प्राचीन काल के भीमकाय जानवर निकल आयें तो क्या हो। भयावह टैंकों, विशाल क्रेनों, विराट ग्लाइडरों जैसे ये अजीबोगरीब जानवर नगर में सारा यातायात ही रोक दें, बसें, गाड़ियां उलट दें, बिजली के तार तोड़ डालें, सारे पार्क रौंद डालें। डरो नहीं, ऐसा सचमुच में कभी नहीं होगा, क्योंकि ये प्राचीन जीव बहुत पहले ही खत्म हो चुके हैं। करोड़ों साल पहले ये सब मर गये थे। हमें इनके बारे में जानकारी "अश्म पुस्तक" के पृष्ठों से ही मिली है।

"अश्म पुस्तक" क्या है?

अश्म का अर्थ है पत्थर। "अश्म पुस्तक" यानी पत्थर की किताब हमारी पृथ्वी ही है। इस पुस्तक के पृष्ठ हैं रेत और चिकनी मिट्टी की वे परतें, जो नदी के ऊंचे किनारे पर या गहरी खोदी नाली में इतनी अच्छी तरह दिखाई देती हैं। ये परतें-पृष्ठ जितने गहरे होते हैं, उतने ही अधिक पुराने। सबसे ऊपर के पृष्ठ मनुष्य के इतिहास के बारे में बताते हैं। इन परतों में पुराने ज़माने के लोगों के औज़ार, हथियार और सिक्के मिलते हैं।

इनके नीचे सचमुच ही पत्थरों के परत-पृष्ठ होते हैं,

क्योंकि वहां रेत जमकर बालुई पत्थर बन गई है और काई व चिकनी मिट्टी पटिया पत्थर। इन परतों में मनुष्य के कोई चिह्न नहीं मिलते। फिर भी ये पृष्ठ उतने ही रोचक हैं, जितने कि कथा-कहानियों के पृष्ठ।

"अश्म पृष्ठ" कहां देखे जा सकते हैं?

"अश्म पुस्तक" तो बहुत ही मोटी है। इसके निचले पृष्ठ ऊपरी पृष्ठों से दसियों किलोमीटर दूर हैं। ये पृष्ठ हैं भी बहुत भारी। स्वयं प्रकृति यदि मदद न करती, तो मनुष्य इन्हें कभी खोल ही न पाता। पहाड़ों में पत्थरों की परतें उलट-पलट हुई होती हैं। हवा और पानी इनमें गहरे दर्रे बना देते हैं, जहां प्राचीन से प्राचीन पृष्ठ भी उघड़ आते हैं। ऐसे ही स्थानों पर कभी लोगों ने अतिविशाल हड्डियां देखीं और फिर दानवों, अजदहों और भीमकाय जानवरों की कहानियां गढ़ीं।

"अश्म पुस्तक" क्या बताती है?

चिकने पत्थर पर पर्णांग की पतले-पतले रेशों वाली टहनी नज़र आती है, मानो किसी ने चित्र बनाया हो। पर इसे रबड़ से मिटाकर देखो तो, कभी भी न मिटे। यह प्राचीन वन की अश्मीभूत यानी पत्थर बन गई टहनी है। पास ही पंख फैलाये गुबरैला है। वह भी पत्थर का है। कभी वह इस टहनी पर रेंगा करता था।

इस पारदर्शी पीले कहरुबे को देखो। इसे तृणमणि भी कहते हैं। यह किसी प्राचीन वृक्ष की अश्मीभूत राल है। तृणमणि में मच्छर दिखाई दे रहा है। करोड़ों साल पहले वह राल में फंस गया था।

विशाल चट्टान पर पदचिह्न नज़र आ रहे हैं। यह तीन उंगलियों वाले पंजों की निशानियां हैं। जैसे कि कोई कौआ या मुर्गी यहां चलता रहा हो। लेकिन निशानियां हाथी के पांवों के निशानों से भी बड़ी हैं और एक निशानी से दूसरी के बीच कई मीटर का फ़ासला है। कौन यहां प्राचीन युग में घूमा करता था?

सफ़ेद चूनापत्थर पर तारामीनें सपाट पड़ी हैं, जल-

इस ततैये ने राल की बूंद पर आराम करने की सोची थी। अब लाखों वर्षों से वह पारदर्शी कहरुबे में बंद है।

इन भीमकाय छिपकलियों के लिए संग्रहालय का विशाल हॉल भी छोटा है।

इस हिंसक सरीसृप के कटार जैसे दांतों से कोई नहीं बच सकता था। शो-केस में रखे हुए भी ये डरावने लगते हैं।

यह अजदहा गोबी रेगिस्तान से लाया गया है।
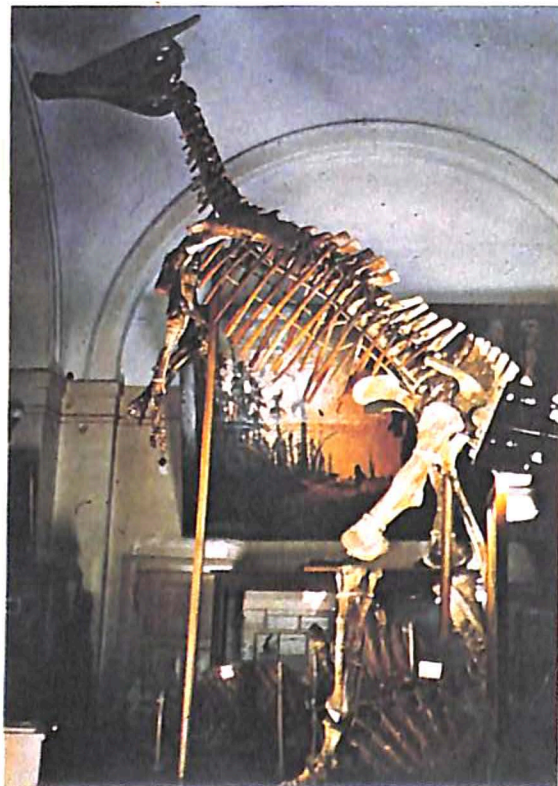
साहियां गठरी बनी हुई हैं, छोटी-छोटी मछलियों का झुंड समुद्री कुमुदनियों के झुरमुट में तैरता प्रतीत होता है। यह समुद्र का अश्मीभूत तला है।

"अश्म पुस्तक" में डरावने पृष्ठ भी हैं। पत्थरों में अचानक कहीं सरीसृप-अजदहे के कपाल पर कटारों जैसे दांत चमक उठते हैं, या विराट बिच्छू का पांचे जैसा चंगुल दिखाई दे जाता है।

और ये विशाल हड्डियां किसकी हैं? क्या ये एक आंखवाले दैत्याकार जानवर की हैं?

"अश्म पुस्तक" कौन पढ़ता है?

"अश्म पुस्तक" जीवाश्मविज्ञानी पढ़ते हैं। वे पहाड़ों, रेगिस्तानों में जाते हैं, उन इलाकों में जहां इस पुस्तक के प्राचीन पृष्ठ पृथ्वी की सतह पर निकल आये हैं। "अश्म पुस्तक" पढ़ना बहुत कठिन है। प्रायः जीवाश्मविज्ञानियों के पहुंचने से पहले खुले पृष्ठ पर धूप, हवा और बारिश अपना काम कर चुके होते हैं। "अश्म पृष्ठ" में दरारें पड़ चुकी होती हैं। पशुओं की अस्थियां गड्डमड्ड हो गई होती हैं। प्राचीन शंखों, सीपियों, कीड़ों-मकोड़ों और वनस्पतियों की छापें दूर बिखर गई होती हैं। ऐसे पृष्ठ को पढ़ने के लिए वैज्ञानिकों को बहुत काम करना होता है।

जीवाश्मविज्ञानी तो कभी-कभी एक हड्डी देखकर भी यह बता सकता है कि वह किस जानवर की है, क्योंकि वह विभिन्न पशुओं के शरीर की बनावट अच्छी तरह जानता है। वह सभी प्राप्त हड्डियों को उनके स्थान पर रखता है और ठीक-ठीक यह बताता है कि उस जानवर का डील-डौल, रूप-रंग कैसा था, हालांकि इससे पहले कभी किसी मनुष्य ने वह जानवर नहीं देखा। जीवाश्मविज्ञानी यह भी पता लगा लेता है कि ऐसा जानवर कहां रहता था और क्या करता था।

जीवाश्मिकी की ज़रूरत क्या है?

कथा-कहानियों के पशु-पक्षी प्रायः जादूई खज़ाना ढूंढ़ने में वीरों की मदद करते हैं। "अश्म पुस्तक" के जानवर भी भूगर्भीय सम्पदा का रास्ता बताते हैं। जिन्हें यह पुस्तक पढ़नी

नहीं आती, उनके लिए इसके सभी पृष्ठ एक दूसरे के जैसे होते हैं। भला कैसे पता चले कि लोगों के लिए आवश्यक भंडार कहां ढूंढ़े जायें?!

लेकिन जीवाश्मविज्ञानी अश्मीभूत पत्तियां और शंख देखकर कहता है: "हां, यहीं ढूंढ़ना चाहिए!" क्योंकि कुछ अश्मीभूत जीव केवल भूगर्भ की उन परतों में पाये जाते हैं, जहां कोयला होता है, और कुछ ऐसी परतों में जहां खनिज तेल होता है।

और फिर सभी लोग सदा यह जानने को उत्सुक रहे हैं कि हमारे से पहले क्या था। पृथ्वी कैसी थी? कैसे जीव-जंतु यहां विचरते थे? उनका रूप-रंग, डील-डौल कैसा था? जीवाश्मिकी इन सब प्रश्नों का उत्तर देती है।

वैज्ञानिक एक और "अश्म पृष्ठ" खोल रहे है।

हमारी पुस्तिका के बारे में

"अश्म पुस्तक" में जीवाश्मविज्ञानियों ने चार अध्याय पढ़े हैं। पहले, "ऊपरी" अध्याय से उन्हें नूतन जीवन के समय का पता चला है। यह वह समय था, जब अपने बच्चों को दूध पिलाने वाले जीव-जंतु पृथ्वी पर बसे हुए थे। ये जीव-जंतु आजकल के जीव-जंतुओं से मिलते-जुलते थे।

इसके नीचे के दूसरे अध्याय से वैज्ञानिकों को मध्य जीवन के समय का पता चला है। यह वह समय था जब पृथ्वी पर भीमकाय सरीसृपों का राज था।

इससे भी नीचे के तीसरे अध्याय में वैज्ञानिकों ने पुरा जीवन के समय के बारे में पढ़ा, जब पृथ्वी पर न पशु थे, न पक्षी, यहां पर बस विराट मेंढक, मछलियां और समुद्री बिच्छू ही रहते थे।
सबसे नीचे के चौथे अध्याय से जीवाश्मविज्ञानियों को आदि जीवन के समय के बारे में पता चला है। तब पृथ्वी खाली थी और समुद्रों में छोटे-छोटे पारदर्शी जीव रहते थे।

हमारी इस पुस्तिका में तुम पशुओं, पक्षियों और वनस्पतियों को उसी क्रम में देखोगे, जिस क्रम में "अश्म पुस्तक" इनके बारे में बताती है। आजकल के पशुओं से मिलते-जुलते जो पशु अपेक्षाकृत कम समय पहले पृथ्वी पर थे, उनके बारे में शुरू में बताया गया है।
सबसे प्राचीन जीवों और वनस्पतियों के बारे में अंत में।

लगता है, प्राचीन सरीसृप पकड़ में आ गया।

हिम में लिपटा अफ़्रीका

२५ हज़ार साल पहले

बाप रे! कितनी ठंड है! चारों ओर हिम और बर्फ़ है। उक्राइना के मैदानों में हिमनद धीमे-धीमे सरकते हुए बढ़ते आ रहे हैं। ये उत्तरध्रुवीय इलाके की ओर से भी बढ़ रहे हैं तथा उक्राइना से दक्षिण में स्थित काकेशिया पर्वतमाला की ओर से भी। जहां पर बर्फ़ नहीं है, वहां उत्तरी मैदान – स्तेपियां – हैं। यहां मरियल से फ़र और चीड़ वृक्ष उग रहे हैं, बौने से भोज वृक्ष और झाड़ियां ज़मीन पर ही फैल रहे हैं। इनके बीच हाथी और गेंडे डोलते फिरते हैं, बिल्कुल वैसे ही जैसे अफ़्रीका में। पर यहां इन जानवरों के शरीर पर बड़े-बड़े बाल हैं। लाल जटाओं की तरह उलझे बाल ज़मीन तक लटकते हैं। इस झबरीले हाथी को **मैमथ** कहते हैं। मैमथ अपने बाहरी दांतों से हिम कुरेदता है, उसके नीचे छिपे पुराने नरकट और भोज वृक्षों की टहनियां खाता है। वह अपना सख़्त चारा धीरे-धीरे चबाता है। उसके मुंह में केवल चार दांत हैं, लेकिन हर दांत आदमी के सिर जितना बड़ा है। हां, मैमथ के कान छोटे-छोटे ही हैं। पंखों जैसे हाथी के कान उसे नहीं चाहिए, यहां तो वैसे ही ठंड है।

पास ही गेंडा चर रहा है। उसके शरीर पर भी लंबे-लंबे बाल हैं। इसे **बालदार गेंडा** ही कहा जाता है।

इन बड़े-बड़े बालदार जानवरों जैसा **ही बड़े-बड़े सींगों वाला हिरन** है। वह अपनी सतर्क नज़रें चारों ओर घुमाता है: कहीं आस-पास भयानक हिंस्र जंतु – **गुफ़ा-सिंह** – तो नहीं है। आखिर यहां सब कुछ अफ़्रीका जैसा ही है। बस यह अफ़्रीका हिम की चादर में लिपटा है।
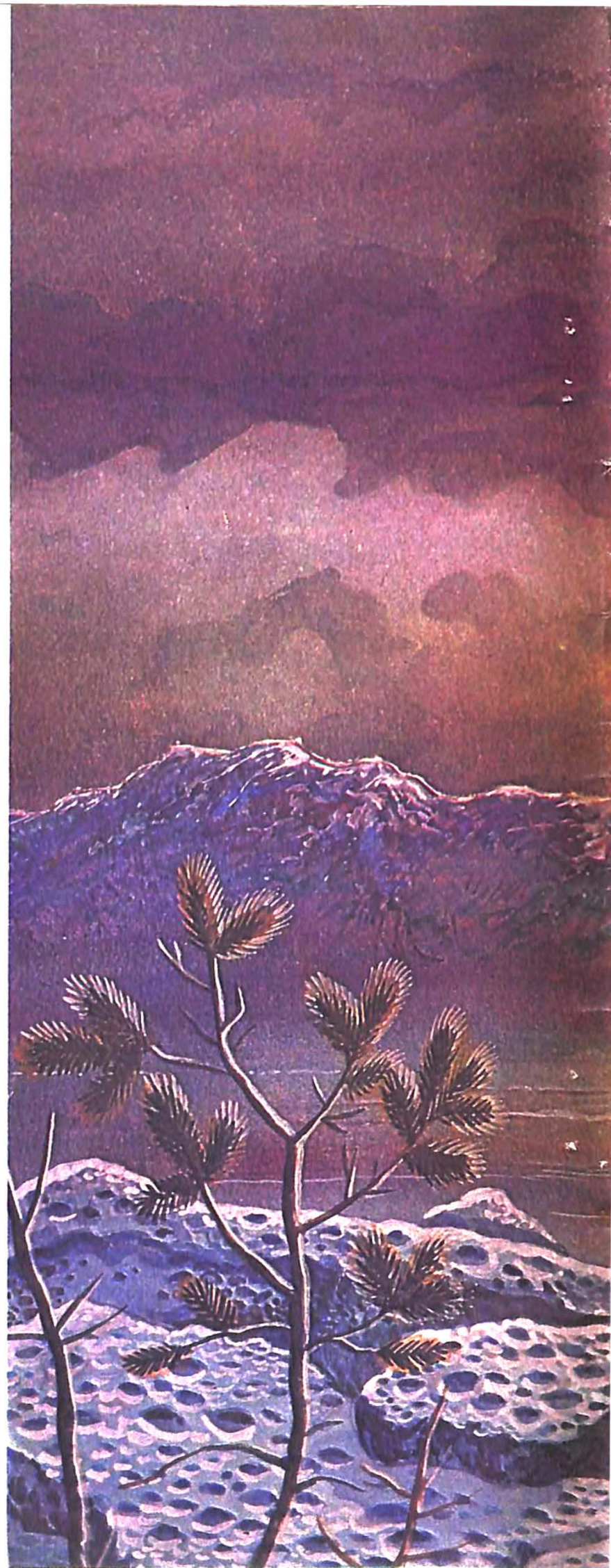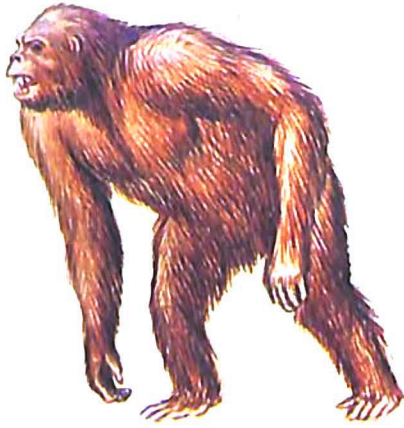
मेगान्थ्रोप। न बंदर, न आदमी। यह बहुत बलवान था और किसी से नहीं डरता था।
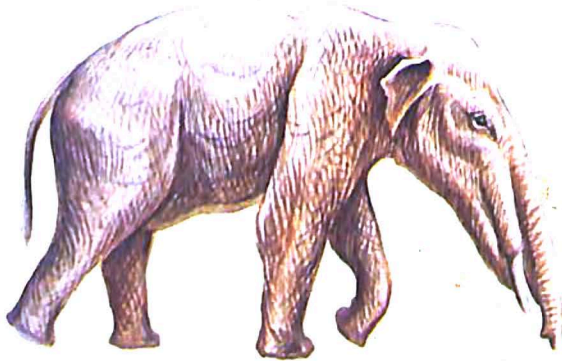
मैस्टोडॉन। हाथी का दूर का संबंधी। यह घास चरता और झाड़ियों की पत्तियां नोचता था।

प्राचीन गेंडा एलास्मोथीरियम हाथी जितना बड़ा था।

जहां बर्फ़ नहीं थी

५० हज़ार साल पहले

जहां हिमनद नहीं थे, जहां गर्माहट थी, यहां तक कि खूब गर्मी पड़ती थी, वहां आश्चर्यजनक भीमकाय जीव रहते थे। इनमें सबसे अधिक रहस्यमय जीव था– **मेगान्थ्रोप** यानी बृहद्मानव (मेगा – बृहद, एन्थ्रोप – मानव)। वैसे यह बंदर और आदमी के बीच का जीव था। यह दो टांगों पर ही चलता था, हाथों से ज़मीन को ज़रा सा छूता ही चलता था। इसका कद सबसे बड़े मनुष्य और सबसे बड़े वानर से दुगना था।

हाथी का संबंधी **मैस्टोडॉन** और गेंडे का संबंधी **एलास्मोथीरियम** बड़े बलवान पशु थे। एलास्मोथीरियम के केवल एक सींग था और वह भी नाक पर नहीं, माथे पर। अपने खम्भों जैसे पांव ज़मीन में गड़ाकर वह अपने सींग से पेड़ों की जड़ें उखाड़ डालता और मज़े से खा जाता था।

उसी ज़माने में अमरीका के उष्णकटिबंधीय वनों में भीमकाय सुस्तपांव – **मेगाथीरियम** – रहते थे। सुस्तपांव अब भी वहां हैं, लेकिन छोटे। बंदर जितने बड़े। सुस्तपांव दिन भर एक ही डाल पर लटका रहता है, जब तक कि सारी पत्तियां खा नहीं लेता। उसके बाद भी वह वहां से हिलने की जल्दी नहीं करता। न उसे भूख अपनी जगह से हिला सकती है, न दुश्मन ही – इतना आलसी है वह। भीमकाय सुस्तपांव तो इससे भी अधिक आलसी था। वह तो पेड़ों पर चढ़ता भी नहीं था। विशाल नाखूनदार पंजों से पेड़ तोड़ लेता था और इत्मीनान से बैठा पत्तियां खाता रहता था।

उसके पास ही **ग्लिप्टोडॉन** रहता था। वह संसार का सबसे बड़ा कवचधारी जीव था। यह जानवर साही जैसा होता था, मगर आकार में आदमी से भी बड़ा। साही जैसे कांटों के बजाय उसकी पीठ पर हड्डी के उंगल-उंगल मोटे खपचे जैसे होते थे। ऐसे जानवर को जैसे ही कोई खतरा नज़र आता वह सिमटकर बख़्तरबंद गोला बन जाता और उसे छूने की किसी को हिम्मत न होती।

हिम युग से पूर्व ...

१० लाख साल पहले

जिराफ़ का संबंधी पेलियोत्रागुस।

हिम युग से पहले पृथ्वी पर खासी गर्मी थी। जहां आजकल ठंडे, उत्तरी इलाकों के ताइगा वन हैं, वहां गर्म जलवायु वाले वृक्ष उगा करते थे, चिड़ियां चहचहाती थीं, रइयां टिटराती थीं और अजीबोगरीब जानवर रहते थे: गर्दन घोड़े की और सिर पर जिराफ़ों जैसे सींग, कान गधों के से और टांगों पर ज़ेबरों जैसी धारियां।

ये जानवर आजकल के जिराफ़ों के दूर के संबंधी थे, इन्हें **पेलियोत्रागुस** कहा जाता है। सभी जानते हैं कि जिराफ़ अफ़्रीका में रहते हैं, लेकिन ये जानवर रूस के मैदानों में रहते थे।
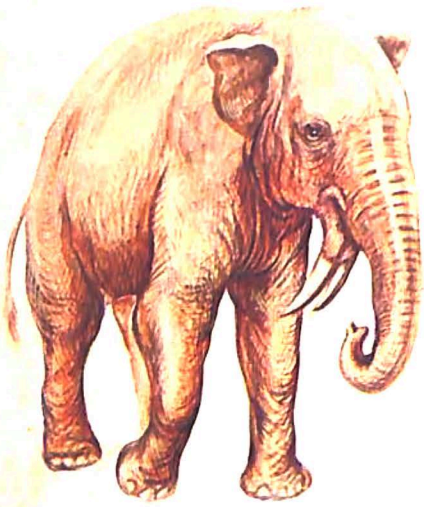
विराट प्राचीन हाथी डाइनोथीरियम के दांत बिल्कुल वैसे ही थे, जैसे अब वालरस के होते हैं।

नदी किनारे हाथी का संबंधी **डाइनोथीरियम** खड़ा है। डाइनोथीरियम का अर्थ है आश्चर्यजनक जानवर। वैसे इस जानवर में आश्चर्यजनक बात कोई नहीं। हाथी जैसा हाथी ही है, हां बहुत बड़ा है, और दांत नीचे को लटके हुए हैं।

प्राचीन पशुओं के सबसे भयानक शत्रु **तलवारदंत** ने अपने शिकार को ज़मीन पर दबोच रखा है। उसकी आंखें अंगारों सी दहक रही हैं, बाल खड़े हैं, छोटे-छोटे कान सटे हुए हैं, दांत उघड़े हुए हैं, उसके तलवार जैसे दांतों से कोई नहीं बच सकता।

पर लो, जानवर शांत हो गया। उसने मुंह पर जीभ फेरी, तलवारों जैसे उसके दो दांत "म्यान" में छिप गये। इन "म्यानों" की ज़रूरत तलवारदंत को इसलिए है कि घने झुरमुटों में दांतों की धार भोथरी न पड़ जाये।

प्राचीन सूअर एंटेलोडॉन सांड़ जितना बड़ा था, लेकिन इन्द्रिकोथीरियम के बगल में वह छोटा सा ही लगता है।

असमान संबंधी

३ करोड़ साल पहले

रूसी लोककथाओं में इन्द्रीक नामक एक जानवर का उल्लेख आता है। कहते हैं वह इतना बड़ा था कि नदियां रोक देता था और पहाड़ हटा देता था। इसलिए जब वैज्ञानिकों को संसार में सबसे बड़े गेंडे की हड्डियां मिलीं, तो उन्होंने उसका नाम इन्द्रीको-थीरियम रख दिया। यह जानवर इतना बड़ा होता था कि उसके पेट के नीचे से दरियाई घोड़ा आसानी से गुज़र सकता था। इन्द्रीकोथीरियम था तो गेंडा, लेकिन उसका चाल-चलन बिल्कुल जिराफ़ों जैसा था। वह पेड़ों के बीच घूमता था और पत्तियां खाता था। गेंडे जैसा कतई नहीं था।

लंबी टांगों वाले जंगली सूअर **एंटेलोडॉन** का चाल-चलन दरियाई घोड़ों जैसा था। सारा दिन वह नदी में रहता था और रात को मैदानों में घूमता था। लंबे-लंबे रोयों और पैने दांतों वाले इस जानवर को जो कुछ मिलता वह खा लेता था: कंदमूल भी, पक्षियों के अंडे भी और सांप भी।

दरियाई हाथी भी देखने में हाथी के बजाय दरियाई घोड़े से अधिक मिलता-जुलता था। यह हाथी अपना विशाल मुंह खोलकर पानी में उगते पौधे मुंह में समेट लेता था और फिर उन्हें खाता था। उसके चपटे दांत पौधों की जड़ें उखाड़ने में उसकी मदद करते थे। ऐसे हाथी को **प्लेटीबेलोडॉन** कहते हैं, जिसका अर्थ है "सपाटदंत"।
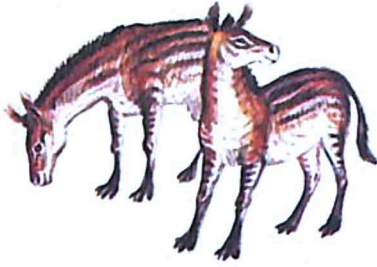
प्राचीन घोड़ा एओहिप्पस लोमड़ी से बड़ा नहीं था; उसके अगले पांवों पर चार-चार उंगलियां थीं और पिछले पांवों पर तीन-तीन।

ऐंड्रयूसआर्खुस लकड़बग्घे जैसा भी था और भालू जैसा भी।

सभी साहियों के परदादा स्यूडोइक्टोप्स के शरीर पर कांटे नहीं थे और उसे गोला बनना भी नहीं आता था।

प्राचीन मैदानों की छायाएं

६ करोड़ साल पहले

अंधेरे में डूबे मैदान में विभीषण गर्जन, गड़गड़ाहट
हो रही है। टेढ़ी-मेढ़ी छायाएं चंद्रमा की धूमिल
ज्योति में कहीं दूर भागती जा रही हैं।

यह क्या है?

कहीं भू-स्खलन हुआ है?

भूचाल आया है?

नहीं। किसी ने "गरजते पशुओं"– **ब्रोंटोथीरियमों**
के झुंडों को डरा दिया है।

फटी-फटी सी लंबी दहाड़ सुनाई देती
है। और चांदनी में किसी का झबरीला शरीर नज़र
आता है। भयावह आंखें दहकती हैं।
विराट जबड़ों में दांतों की लोमहर्षक चमक दिखाई
देती है। यह रातों का आतंक –
ऐंड्रयूसआर्खुस – शिकार पर निकला है।

मूषक जैसा छोटा सा जानवर एक ओर को छिटक
जाता है और ज़मीन से सट जाता है। सभी
साहियों का परदादा **स्यूडोइक्टोप्स**
भयभीत है। अभी उसके शरीर पर कांटे नहीं हैं।

और जब सब शांत हो जाता है, तो चारों ओर
छोटे-छोटे जानवर फुदकते हैं। ये प्राचीन
घोड़े **एओहिप्पस** हैं, लोमड़ी जितने
बड़े। तीन उंगलियों और खुरों वाले पांव ओस से
भीगी घास पर निश्शब्द बढ़ते हैं। हवा
में लचकीली पूंछें चमकती हैं, जिनके
सिरों पर बालों का छोटा सा गुच्छा है।

सच्चे घोड़े बनने के लिए
अभी इन्हें सहस्रों वर्षों तक बढ़ना और दौड़ना सीखना है।

ऐपिओर्निस पक्षी खड़ा-खड़ा दूसरी मंज़िल की खिड़की में झांक सकता था। यह पांच करोड़ साल पहले रहता था।

मोआ पक्षी आस्ट्रेलिया और न्यूज़ीलैंड के जंगल में रहता था। दो सौ साल पहले मनुष्य ने इसका वंश खत्म कर दिया।

भीमकाय पक्षी

साढ़े तीन करोड़ साल पहले

नूतन जीवन युग में पृथ्वी पर भांति-भांति के छोटे-बड़े हज़ारों पक्षी रहते थे। इनमें कई भीमकाय पक्षी भी थे, जो शुतुरमुर्ग से ही सबसे अधिक मिलते-जुलते थे। लेकिन इनमें से किसी के भी सामने शुतुरमुर्ग बौना ही लगता। ये सब पक्षी उड़ नहीं सकते थे, लेकिन दौड़ते बड़ी तेज़ी से थे।

अभी तक मडागास्कर द्वीप के दलदलों में **ऐपिओर्निस** के अंडे मिलते हैं। इन अंडों से जो चिड़ा निकलता था, वह मुर्गी जितना बड़ा होता था। बड़ा ऐपिओर्निस तो दूसरी मंज़िल की खिड़की में झांक सकता था। ऐपिओर्निस और उससे मिलता-जुलता पक्षी – **मोआ**, जो न्यूज़ीलैंड के जंगलों में रहता था, हिंसक पक्षी नहीं था, किसी का बुरा नहीं करता था।

जल्लाद पक्षी

फ़ोरोराकोस पक्षी भी दूसरी मंज़िल की खिड़की में झांक सकता था। उसका सिर घोड़े के सिर से भी बड़ा होता था। चोंच फ़रसे जैसी होती थी। यह रक्त-पिपासु पक्षी अपनी निश्चल आंख से अपने शिकार को देखता। फ़रसा-चोंच से असावधान शिकार के टुकड़े-टुकड़े कर देता। और लो, जल्लादों की दावत में भाग लेने गिद्ध उड़ आते। कंडरीली, चीमड़ टांगों पर दूसरा शिकारी पक्षी – **डायाट्रीमा** – भी दौड़ा आता और भीमकाय पक्षी के इर्द-गिर्द मंडराने लगता। शायद उसे भी कोई बोटी मिल जाये।

फ़ोरोराकोस को देखकर यह कल्पना करना कठिन है न कि यह जल्लाद हमारे प्यारे सारसों का संबंधी है।

अतीत और भविष्य के बीच

सात करोड़ साल पहले

फुर्तीले जानवर इधर-उधर दौड़ रहे, कुलबुला, सरसरा रहे हैं। उनकी लंबी नाकें निरंतर हिलती रहती हैं, तेज़ दांत सब कुछ चबाते जाते हैं। पर देखो, उनकी कनौतियां खड़ी हो गईं, नज़रें एक बिंदु पर टिक गईं। और फिर पलक झपकते ही वे गायब हो गये। जहां ये छोटे-छोटे जानवर कुलबुला रहे थे, वहां बेढब, कुरूप भीमकाय जीव जड़वत खड़ा है। सूरज डूब रहा है। धरती पर लंबी-लंबी काली परछाइयां फैल रही हैं। भीम-काय जीव की आंखों में लाल किरणें प्रतिबिम्बित होती हैं। सूखे पेड़ की विशाल डालों जैसे उसके पंजों में गति आ जाती है। तीखा क्रंदन गूंजता है और फिर तुरंत ही शांत हो जाता है। कोई प्रत्युत्तर नहीं मिलता, कोई नहीं आता। छोटे-छोटे फुर्तीले जानवर ही पत्थर के नीचे से निकल आते हैं और पहले की ही भांति इधर-उधर दौड़ने लगते हैं। उन्हें इस भीमकाय सरीसृप से कोई वास्ता नहीं है, जो हर शाम को सूर्यास्त के समय यहां आता है और अपनी पुकार के उत्तर की प्रतीक्षा करता है। वे इसके आदी हो गये हैं, जैसे कि खुरदरे पत्थरों और जलीय वनस्पतियों की गंध के आदी हो गये हैं।

भीमकाय जीव भी उनकी ओर ध्यान नहीं देता। उसे क्या पता कि उसके दिन बीत गये हैं और पांवों के पास हाथियों, गेंडों और ह्वेलों के पर-परदादे कुलबुला रहे हैं, कि ये जीव ही आने वाले सहस्रों वर्षों के लिए पृथ्वी के स्वामी होंगे।
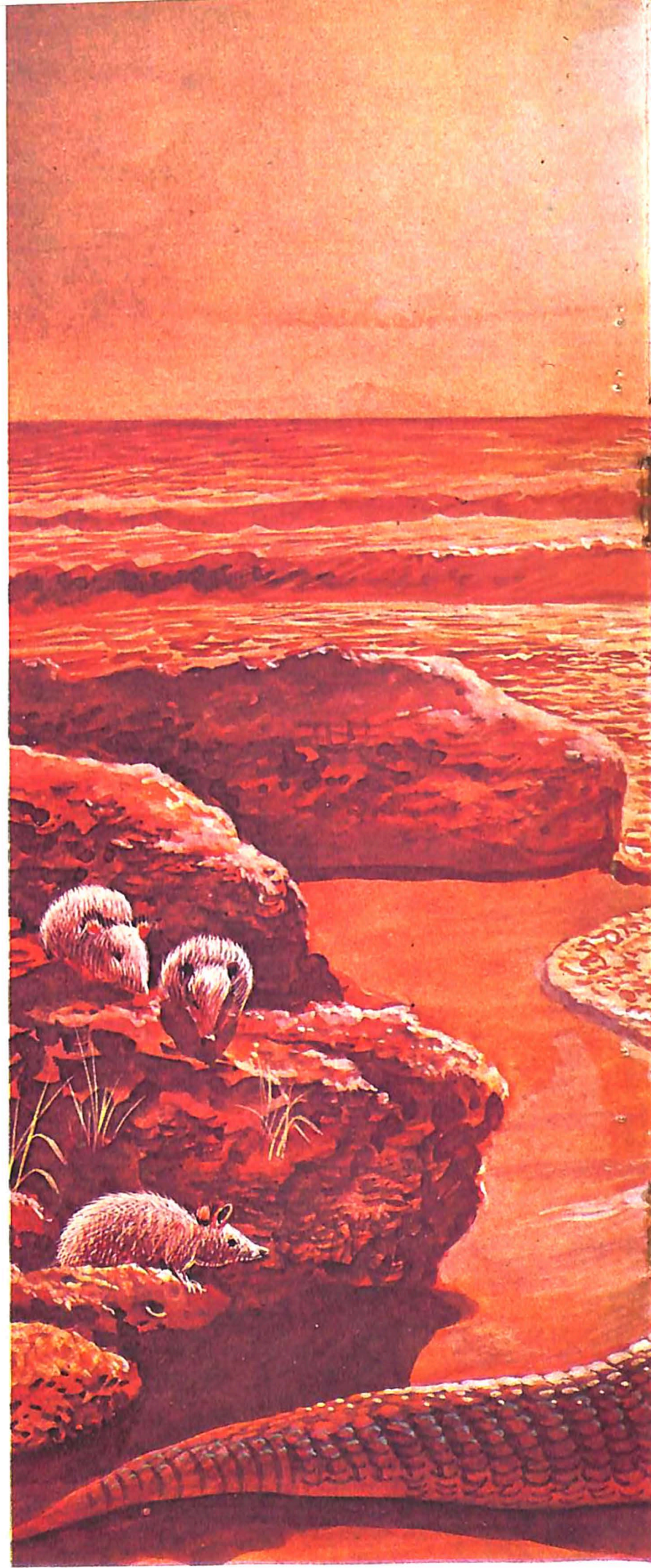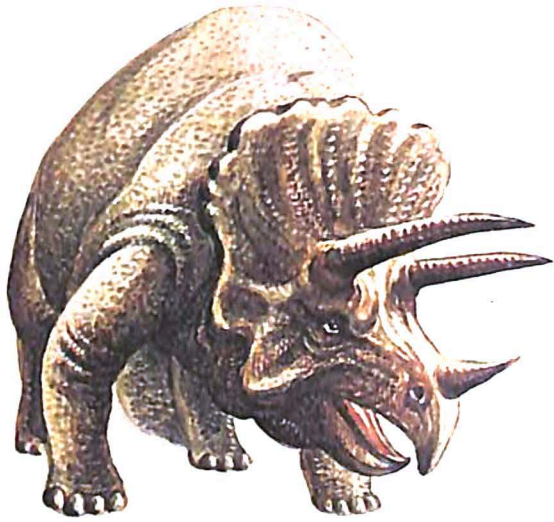
ट्राइसेराटॉप्स सरीसृप सांड़ जितना बड़ा था। वह अपनी रक्षा करने में पूरी तरह समर्थ था। इन सरीसृपों के कपालों पर दूसरे जानवरों से लड़ाइयों के निशान मिलते हैं।

मध्य जीवन युग

७–१४ करोड़ साल पहले

उस युग में मनुष्य को पृथ्वी भयावह ही लगती। तब मैदानों में घास और फूल नहीं उगते थे। उनके ऊपर रंग-बिरंगी तितलियां नहीं मंडराती थीं। विचित्र, दांतदार पक्षी चहचहाते और गाते नहीं थे, बल्कि फुफकारते और टर्राते थे। इनके सिरों के बहुत ऊपर वृक्षरूपी पर्णांगों की विशाल टहनियां डोलती थीं। जिन सदाबहार पेड़ों पर आजकल हम सुईनुमा पत्तियां देखते हैं, उन पर तब तनुत्वचीय चौड़ी पत्तियां होती थीं।

चारों ओर सरीसृप हैं। केवल सरीसृप ही। जल, थंल और वायु में – सर्वत्र सरीसृप ही सरीसृप। छोटे और बड़े सरीसृप। हिंसक और अहिंसक सरीसृप। मंद सरीसृप और तेज़ चलने वाले सरीसृप। लोमहीन त्वचा वाले और झबरीले सरीसृप। दो और चार टांगों वाले सरीसृप। ऐसे सरीसृप जिनकी टांगों के स्थान पर मीनपक्ष थे। सरीसृप ही पृथ्वी के स्वामी थे।

छोटा सा प्रोटोसेराटॉप्स सींगदार ट्राइसेराटॉप्सों का परदादा था। हड्डी का शिरस्त्र ही हिंसक जंतुओं से उसकी रक्षा करता था। सभी डाइनोसारों की भांति यह भी रेत के उथले गड्ढों में अंडे देता था।

गोताखोर सरीसृप

८ करोड़ साल पहले

बत्तखनखी सरीसृप – **साउरोलोफ़स** – अहिंसक वनस्पतिभक्षी जीव था। वह हिंसक पशुओं से नहीं डरता था, क्योंकि वह पानी में छिपकर अपना बचाव कर सकता था। आकार में यह दुमंज़िले मकान जितना था और इसके सिर पर जो विशाल कलगी थी, उससे यह और भी अधिक ऊंचा लगता था।
यह गोताखोर सरीसृप खूब अच्छी तरह तैरता था और भांति-भांति की जलीय वनस्पतियां खाता था। पानी के नीचे वह चोंच से मज़बूत जड़ों को झकझोरता रहता, बस कलगी ही पानी से बाहर रहती। गोताखोर सरीसृप पानी से बाहर निकलने की जल्दी नहीं करता था, उसे दम घुटने का डर नहीं था, क्योंकि उसकी कलगी में दो नलियां थीं, जो सीधे नाक में जाकर खुलती थीं। उन्हीं से वह सांस लेता था। देखा, कितना सीधा और कारगर उपाय था!
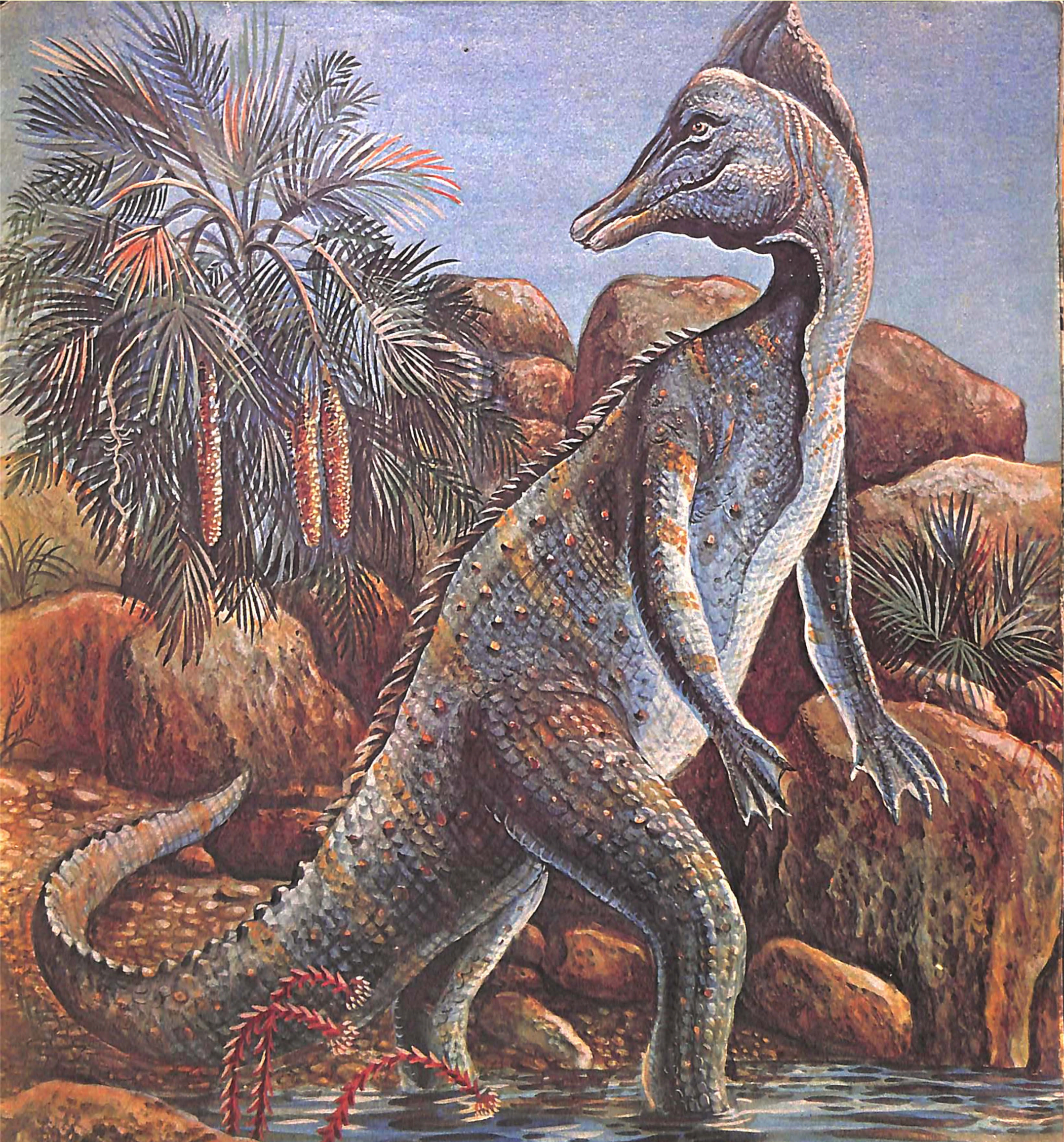
लुटेरा सरीसृप

८ करोड़ साल पहले

पृथ्वी पर सबसे बड़े और बलवान सरीसृप **डाइनोसॉर** थे। डाइनोसॉर का अर्थ है "आश्चर्यजनक सरीसृप"। और इनमें सबसे भयानक और सबसे अधिक रक्त पिपासु थे **टिरानोसॉरस** यानी लुटेरे सरीसृप।

टिरानोसॉरस तेज़ी से मैदान में निकलता है। छोटे-छोटे हाथों वाला यह सरीसृप बड़ा डरावना है। उसके खंजरों जैसे दांत चमकते हैं, वह अपनी लंबी मांसल पूंछ ज़मीन पर फटकारता है। उसके विशाल, मज़बूत नाखून ज़मीन पर गहरी लीकें बनाते जाते हैं। तपी हवा में उसकी फुंकार और फटी-फटी चीखें गूंजती हैं। लुटेरा सरीसृप अपने शिकार पर टूट पड़ता है।

लेकिन शिकार भी इतनी आसानी से बस में आने वाला नहीं है। देवदार के दानवाकार शंकुफल जैसा **ऐंकिलोसॉरस** ज़मीन से सट जाता है, अपने अस्थि शल्क फुला लेता है। उसकी पूंछ, जिसका सिरा कांटेदार गदा जैसा है, मुड़ जाती है और हवा को चीरती हुई ज़ोरों से घूमने लगती है: कोई पास आकर तो देखे, एक चोट में ही प्राण निकल जायेंगे।

लुटेरा टिरानोसॉरस छिटककर परे कूद जाता है, लेकिन ऐंकिलोसॉरस फिर से उसकी ओर पूंछ घुमा देता है: ज़रा पास आकर देख, बच्चू!
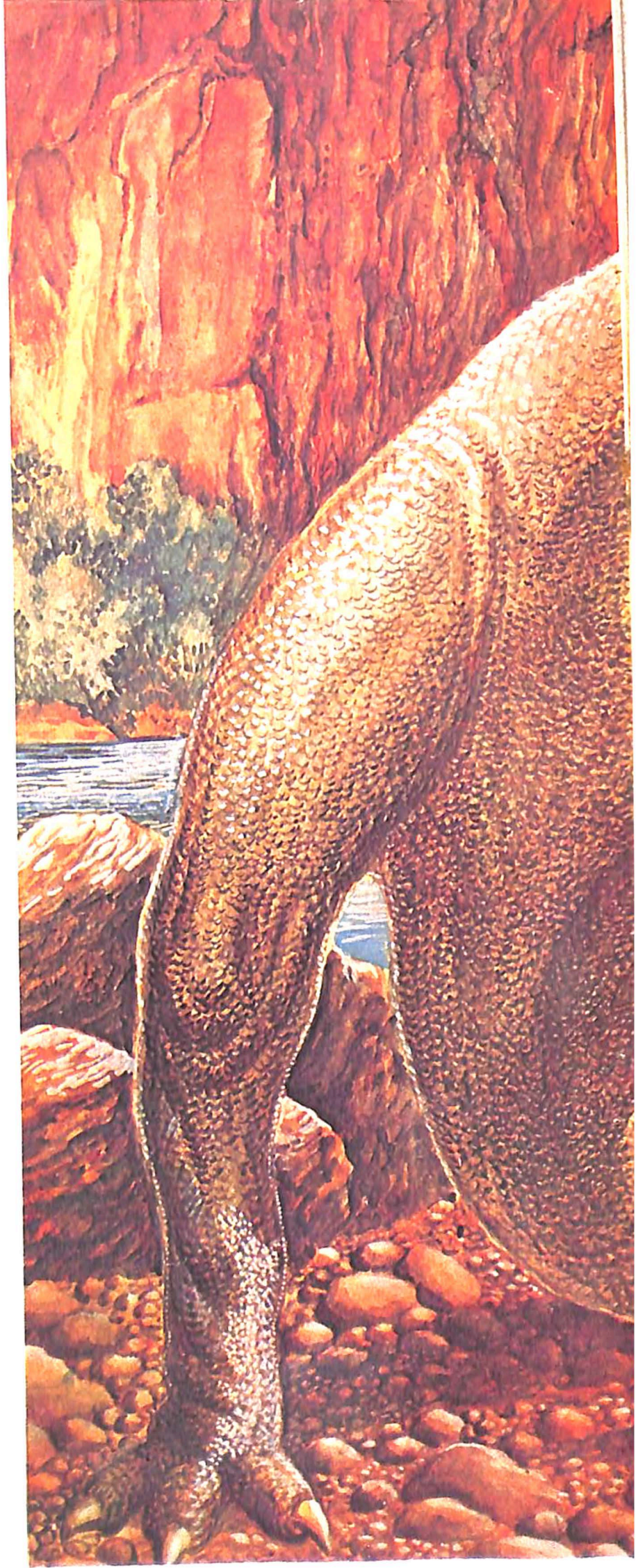
पिक्नोडॉन मछली सीपियां चबाती थी और खुद भी समुद्री सरीसृपों व पक्षियों का निवाला बनती थी।
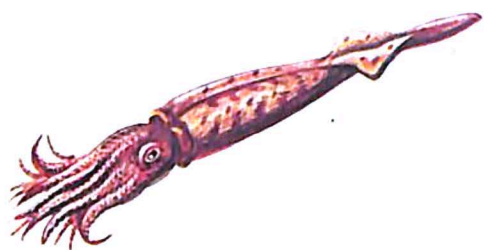
बेलेम्नाइट मूंगे की अजीबोगरीब संरचनाओं के ऊपर टोरपीडो की तरह चलते थे।

एम्मोनाइट उस समुद्रफेनी जैसा लगता है, जिसे ट्रक के पहिये जितने बड़े शंख में बिठा दिया गया हो।

पक्षी और सरीसृप

१२ करोड़ साल पहले

खाड़ी के ऊपर अंगारे बरसाता आकाश है। हवा का कहीं कोई झोंका तक नहीं आता। लेकिन सागर निद्रामग्न नहीं है। महासागर से हरी तरंगें आती हैं, फुफकारती हुई रोड़ी पर बढ़ जाती हैं
और फिर तटवर्ती पत्थरों पर शांत हो जाती हैं।

ज्वार की सफ़ेद लहर में लंबा काला सिर प्रकट होता है। उसके तेज़ दांतों में विशाल मछली– **पिक्नोडॉन** – छटपटा रही है। झाग के इंद्रधनुषी बुलबुलों में लिपटी लहर शांत होकर लौट चलती है। उधर बिना पंखों वाला पक्षी अपने झिल्लीदार लाल पंजों पर पूरा ज़ोर डालते हुए अपने घोंसले को चल देता है।

रास्ते में यह बेढब मछलीमार पक्षी – **हेस्पेरोर्निस** – दांतों वाले छोटे-छोटे पक्षियों – **इख़्तियोर्निसों** – के झुंड को छेड़ देता है। तुरंत ही फुफकार, टर्र-टर्र
और जबड़ों की किट-किट हवा में गूंज उठती है।

सहसा निश्शब्द काली छाया इस शोर मचाते झुंड को मानो ज़मीन से सटा देती है।
अपने असीम पंखों को डोलाता सरीसृप – **प्टेरानोडॉन**
आकाश में उड़ा है।
इसके झिल्लीदार पंख इतने बड़े हैं कि एक
पंख के तले ही कई हाथी समा जाते।
लेकिन यह उड़ता सरीसृप
नीचे नहीं देखता है। वह महासागर की ओर
उड़ता जाता है। वहां गरम धुंध में समुद्री सरीसृपों – **प्लेज़ियोसॉरसों** – की लंबी गर्दनें बल
खा रही हैं। **बेलेम्नाइटों** का शिकार शुरू हो
रहा है। इन मछलियों के विशाल
झुंड खाड़ी में आ रहे हैं।
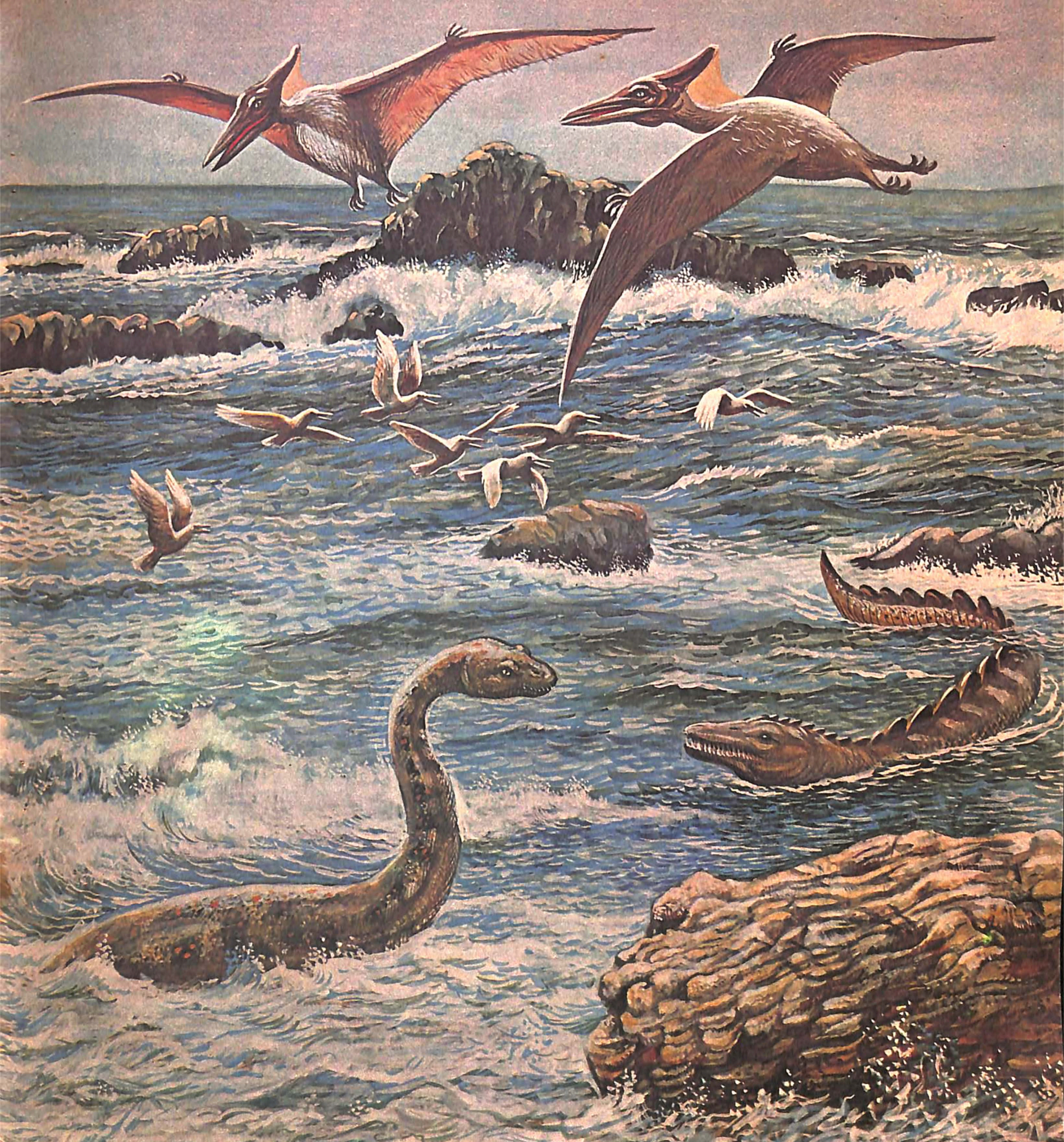
दस्यु सरीसृप

१० करोड़ साल पहले

विशाल समुद्री कछुआ – **आर्खेलोन** – पूरे ज़ोरों से अपने पंखरूपी हाथ-पांव चला रहा है। वह बस यही चाहता है कि किसी तरह दूर भाग जाये, छिप जाये, अपनी जान बचा ले। ऐसे उजले, धुपहले दिन में कौन भला ह्वेल का निवाला बनना चाहता है। कछुआ कभी मूंगे के चटकीले भुरमुटों के ऊपर से होता हुआ समुद्र के तले से जा सटता है, कभी छत्रिकों यानी जेलीफ़िश मेडूसा के थक्कों को चीरता ऊपर सतह पर निकल आता है। मगर सब बेकार। विभीषण ह्वेल पास ही पास आती जा रही है। बस थोड़ी देर में ही कछुए का काम तमाम होने वाला है। पर तभी कछुआ एक भयानक भंवर में फंस जाता है। ऊपर कहीं दानवाकार देह बिजली की तरह लपकती है। गुफ़ा जैसा विराट, नुकीले दांतों से भरा मुंह खुलता है और पलक भपकते ही ह्वेल का धड़ उसमें ओझल हो जाता है। बस उसकी दुम ही बेतहाशा छटपटाती रहती है... यों अचानक कछुए की जान बचाने वाला समुद्री सरीसृप **मोसासॉरस** है। कछुए का दम घुट रहा है... आख़िरी ज़ोर लगाकर वह समुद्र की सतह की ओर लपकता है, जहां सूंसों जैसे मीनसरीसृप क्रीड़ामग्न हैं। कछुआ बिल्कुल ठीक समय पर ही ऊपर सतह पर निकल आया है, क्योंकि मोसासॉरस ह्वेल को हड़प कर किसी और शिकार की ताक में है।

प्राचीन वन में

१७ करोड़ साल पहले

पृथ्वी पर जितने भी सरीसृप हुए हैं, उनमें एक सबसे बड़ा सरीसृप **डिप्लोडॉकस** था। आज यदि ऐसा जानवर किसी बड़े शहर की खुली सड़क पर निकल आये तो एक पटरी से दूसरी पटरी तक पूरी सड़क ही घेर ले। डिप्लोडॉकस सारा दिन दलदलों में घूमता रहता था और निरंतर चरता रहता था। लंबी सर्पिल ग्रीवा पर छोटा सा सिर कभी पेड़ों के ऊंचे शिखरों तक उठता, कभी पानी में गहरा गोता लगाता। ऐसे दानवाकार शरीर के लिए पर्याप्त भोजन पाना कोई आसान काम थोड़े ही है।

स्टेगोसॉरस सरीसृप भी चौबीसों घंटे चरता रहता था। पर वह डिप्लोडॉकस जितना दानवाकार नहीं बन सका। वह समुद्र के किनारे के झुरमुटों में रहता था। तैरना उसे भाता नहीं था, सो कोई हिंसक जानवर सहज ही उसे अपना शिकार बना सकता था। इसलिए स्टेगोसॉरस को अपने बचाव का कोई उपाय खोजना पड़ा। उसकी दुम पर नुकीली सुइयों जैसे चार कांटे थे। पीठ पर पतली हड्डियों की खपचियों की दो कतारें थीं। खतरे का आभास होते ही स्टेगोसॉरस ज़ोरों से फुफकारने लगता, अपने पंख-खपचियां खड़खड़ाता, अपनी जानलेवा दुम फटकारता। यह देखकर शत्रु दहल जाता और वह कोई दूसरा शिकार ढूंढ़ने चल देता। उधर स्टेगोसॉरस का शोर सुनकर झिल्लीदार पंखों वाले झबरीले सरीसृप उड़ आते। लेकिन स्टेगोसॉरस को मारना उनके बस का नहीं था, क्योंकि वे खुद बाज़ से बड़े नहीं थे। अपनी चीखों और किट-किट से ये उड़ते सरीसृप चटकीली चिड़िया को डरा देते। अपनी दांतोंवाली चोंच में काले कीड़े को दबाये वह पेड़ के तने सट जाती। पृथ्वी की प्राचीनतम चिड़िया – **आर्कियोप्टेरिक्स** – कबूतर जितनी बड़ी थी और अपने खतरनाक पड़ोसियों से दूर ही रहती थी।

पृथ्वी का प्राचीनतम पक्षी आर्कियोप्टेरिक्स अच्छी तरह उड़ नहीं सकता था, लेकिन दौड़ना और पेड़ों पर चढ़ना इसे खूब आता था।
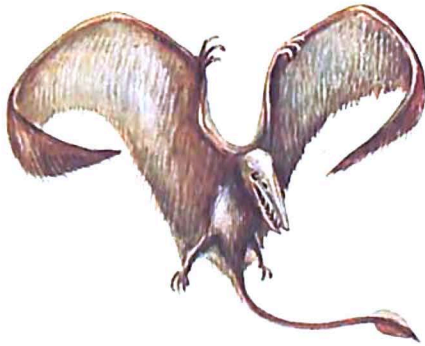
झबरीला सरीसृप प्टेरोडेक्टील कौआ से बड़ा नहीं था।
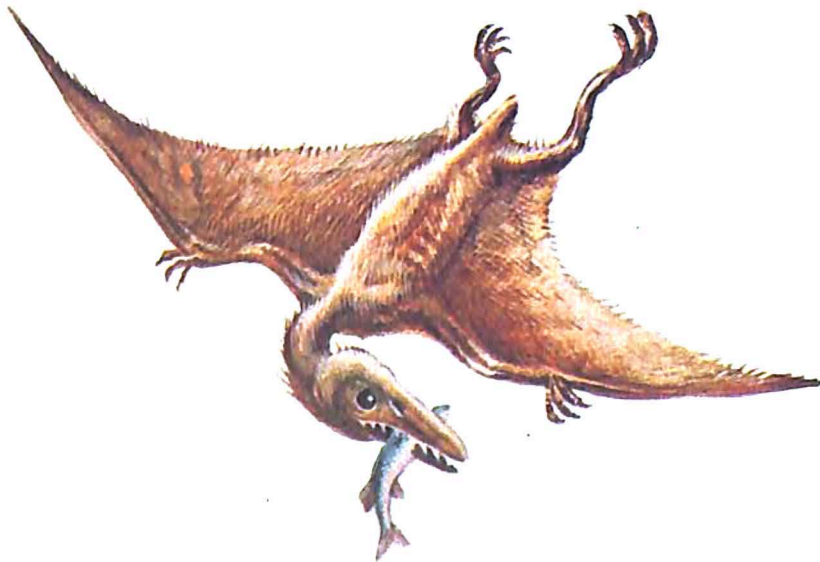
दांतदार सरीसृप रेम्फ़ोरिंख़ोइड मछली का शिकार करता था, पर टिड्डी आ जाये तो उसे भी नहीं छोड़ता था।

पुरा जीवन युग

२२–५७ करोड़ साल पहले

इस युग में पृथ्वी पर सदा गर्मी नहीं रहती थी। कभी-कभी ऐसा भी होता कि उत्तर और दक्षिण ध्रुवों की ओर से विशाल हिमनद बढ़ आते। उनकी ठंडी हवाएं उन स्थानों तक पहुंच जातीं, जहां प्राचीन सरीसृप रहते थे। इसीलिए **एडाफ़ोसॉरस** सरीसृप अपने को गरम रखने का इंतज़ाम अपने साथ रखता था। उसकी पीठ पर पाल जैसी ऊंची कलगी थी। ज्यों ही सूरज निकलता एडाफ़ोसॉरस अपनी पाल सरीखी कलगी धूप में फैला देता। कलगी जल्दी ही गरम हो जाती और उससे सारे शरीर में गरमी दौड़ती।

हिंसक जानवर **इनोस्ट्रांसीविया** अपनी टांगों से गरमी पाता था। वह सारा समय चट्टानों पर, तटवर्ती झुरमुटों में दौड़ता रहता था, इस ताक में कि कहीं गालदार बेढब सरीसृपों – **पेरियासॉरसों** – का झुंड चरता मिल जाये।

सुस्त पेरियासॉरस देखने में बड़े डरावने लगते थे, लेकिन वास्तव में बिल्कुल निस्सहाय थे। छोटी-छोटी टेढ़ी टांगों पर दौड़कर तो वे हिंसक शत्रु से बच नहीं सकते थे। हां, इन पंजों से वे काई को चीर सकते थे। गाय जितना बड़ा पेरियासॉरस दलदल में छिप जाता और तब पैने दांतोंवाला इनोस्ट्रांसीविया उसे ढूंढ़ न पाता।
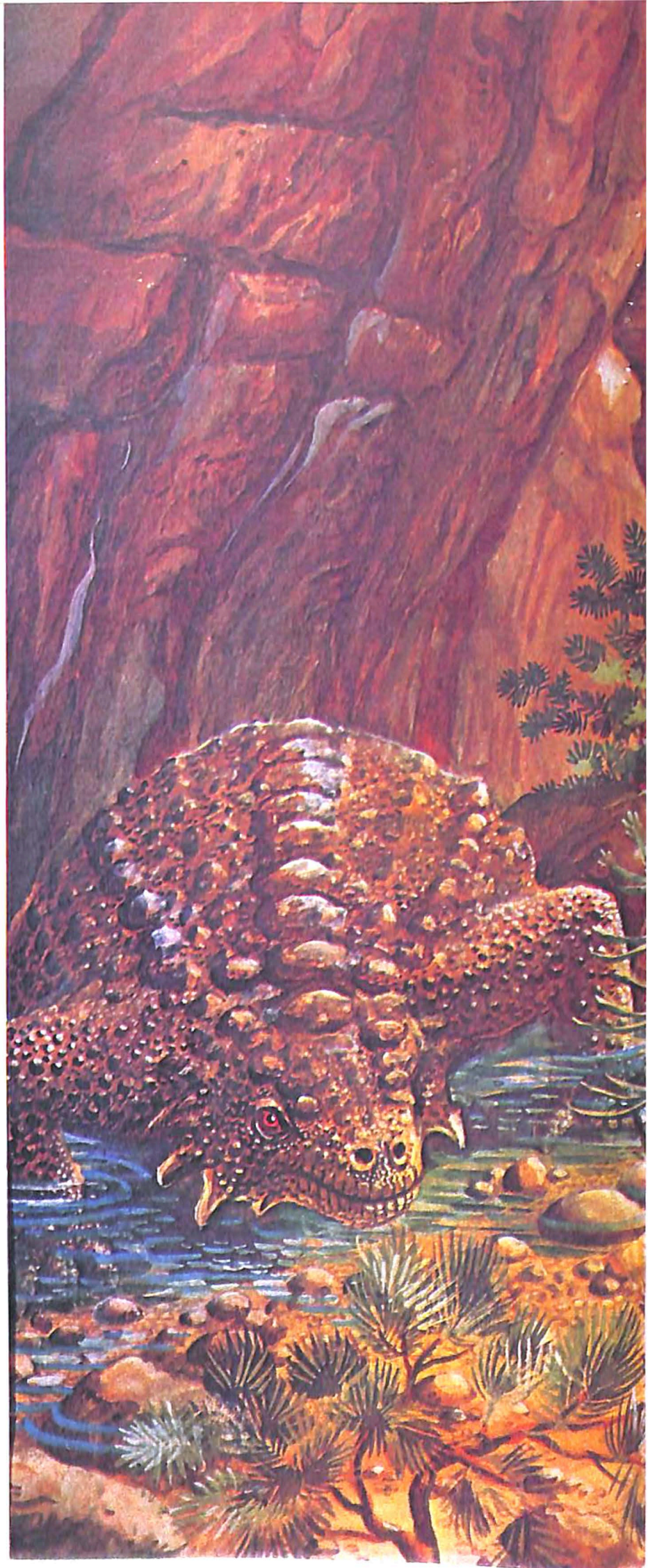
डिप्लोकाउटस नामक स्टेगोसेफ़ेलस समुद्री जहाज के लंगर जैसा था।

छोटा स्टेगोसेफ़ेलस – ब्रांखिसॉर कीड़े-मकोड़े पकड़ता था, दलदलों में रहता था और तट पर प्रायः कभी नहीं निकलता था।
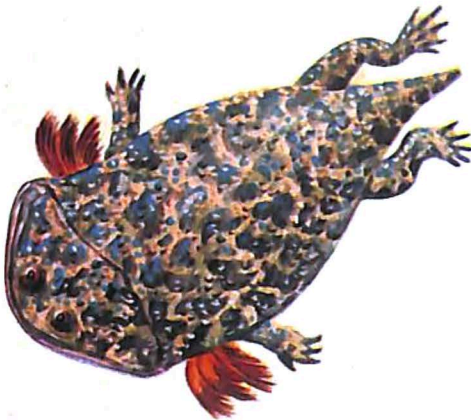
हवा से फुलाये जाने वाले गद्दे जैसा चपटा स्टेगोसेफ़ेलस – प्लागियोसॉर तले पर अपने लाल गलफड़े फैलाकर शिकार की घात लगाता था। वह कभी भी पानी से बाहर नहीं निकलता था।

दानवाकार मेंढक

३० करोड़ साल पहले

इस युग में वन स्पंज की तरह पानी से भरे होते थे। पेड़ों की शल्कीय छाल पर जल धाराएं बहती थीं, पंखनुमा घनी टहनियों से पानी टपकता रहता था। गुलाबी कोहरा छाया रहता था।

कुछ पेड़ पानी में उगते थे, कुछ गेड़ियों जैसी जड़ों पर पानी से ऊपर उठने की कोशिश करते थे। यह विचित्र वन था, इसके वृक्ष विचित्र थे। मानो किसी जादूगर ने अपना मन बहलाने को दलदल की छोटी सी टेकरी और उसके वासियों को हज़ारों गुना बड़ा कर दिया हो। इक्वीसीडम पौधे भोज के पेड़ जितने बड़े थे। लाइकोपीडियम, जो आजकल घास के बीच मुश्किल से दिखाई देते हैं, सौ साला चीड़ वृक्षों जितने ऊंचे उठे हुए थे। टिड्डियों के पंख मीटर-मीटर लंबे होते थे, जब वे उड़तीं, तो पंख ऐसे शोर करते जैसे कि कोई हेलिकॉप्टर उड़ रहा हो। बछड़े जितने बड़ा मेंढक जब मेज़-सा चौड़ा अपना सिर पानी से बाहर निकालकर टर्राता तो सारा जंगल गूंज उठता। आजकल के मेंढकों और ट्राइटनों के असंख्य पर-परदादाओं के सिरों पर टहनियों से गरम भारी बूंदें गिरतीं।

यह सारी "मेंढकों की बारात" पुरा जीवन युग के वन में रहती थी। इन सबका नाम वैज्ञानिकों ने **स्टेगोसेफ़ेलिया** रखा है। किसी-किसी स्टेगोसेफ़ेलस के तीन आंखें होती थीं।

ऐसा स्टेगोसेफ़ेलस धूप सेंकता बैठा रहता। उसकी एक आंख सोती, दूसरी आंख भी सोती, मगर टांट पर की तीसरी आंख जागती रहती, पहरा देती रहती। कहीं कोई अपरिचित छाया झलकती और स्टेगोसेफ़ेलस तुरंत गहरे पानी में कूद जाता।
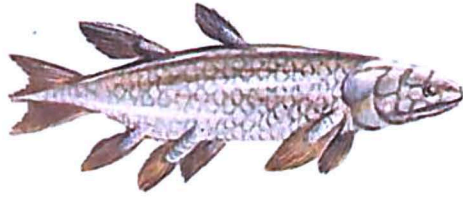
परोंवाली मछली ने ही सबसे पहले थल पर निकलने का साहस किया।
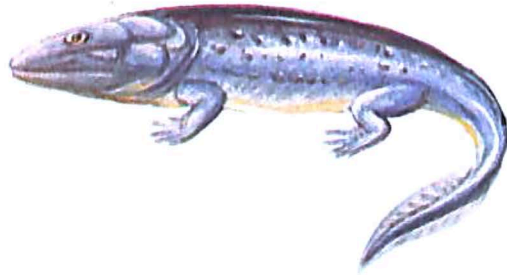
इख़्तियोसेगा मछली नहीं है, पर अभी स्टेगोसेफ़ेलस भी नहीं बना।
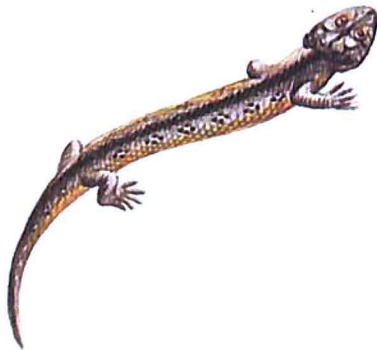
थल पर सबसे पहले निकलनेवाला एक स्टेगोसेफ़ेलस था लेतोवेर्पेतोन।

थल पर निकलना

४० करोड़ साल पहले

यह पृष्ठ पृथ्वी पर हुई एक सबसे महत्त्वपूर्ण घटना के बारे में बताता है। पुरा युग के बिल्कुल आरम्भ में पृथ्वी मनहूस, निस्स्वर मरुभूमि थी। इस पर न कोई रेंगता था न कोई दौड़ता था। काली चट्टानों पर कहीं-कहीं लाल काई के धब्बे ही दिखाई देते थे। सूरज की निर्मम किरणों से बचने के लिए जीवन सागर में ही छिपा हुआ था।

सबसे पहले जलीय पादप थल पर निकले। अरबों वर्षों तक ज्वार की लहरें इन पादपों को किनारे पर लाकर फेंकती रहीं। इनमें से कुछ थल के प्रकाश और वायु के आदी हो गये और थल पर ही उगने लगे। इन तटवर्ती झुरमुटों में ही दूसरे साहसी जीव आ-आकर रहने लगे। ये सब बहुत छोटे-छोटे थे। छोटे-छोटे बिच्छू, इष्टिकावर्णी यानी शंखी मकड़ियां, शंखी किलनियां और कनखजूरे। सागर में इनके अनेक शत्रु थे, और थल पर केवल दो – तपता सूरज और सूखी हवा। इसीलिए थल के पहले निवासी सागर से दूर जाते डरते थे और शंख रूपी कवच धारण किये रहते थे। इनके बाद परोंवाली मछलियां – **क्रोसोप्टेरीगी** -- थल पर निकलीं। इनके मीनपक्ष पंजों का भी काम देते थे, और गलफड़ों के साथ-साथ फेफड़े भी थे। इस तरह ये मछलियां जल में भी और थल पर भी सांस ले सकते थे।

पहले टोहिये अपने जन्मस्थान – महासागर – से दूर ही दूर जाते गये। फिर इस लंबे रास्ते में कनखजूरों के वंशज कीड़े बन गये और परोंवाली मछलियों के वंशज मेंढक, सरीसृप, पक्षी और पशु बन गये।

जलगत बगीचे में

४३ करोड़ साल पहले

धुपहले जलगत बगीचे में शांति छाई हुई है। **समुद्री कुमुदनियों** के हरे, लाल और नीले डंठल तल से ऊपर उठे हुए हैं, लगता है जैसे फूलों से लदे वृक्ष हैं। इनके बीच काईदार तले पर **ब्लास्टोइडिया** की रंग-बिरंगी कलियां और **सिस्टोइडिया** के पके सेब डोल रहे हैं। ये सब जंतु हैं, जलसाहियों और तारामीनों के संबंधी।

समुद्री कुमुदनियों के झुरमुटों में से अजीबोगरीब मछलियां निकलती हैं। आजकल तो इन्हें कोई मछली कहे भी न। किसी मछली का सारा शरीर अचल शंख में जकड़ा हुआ और केवल दुम हिलती है, कोई मछली अधिक फुर्तीली है, अपने शत्रु को बिजली का झटका पहुंचा सकती है। हर मछली शत्रुओं से रक्षा के लिए अपने-अपने साधनों से लैस है। थोड़ी दूरी पर रुपहले पेड़ों का झुरमुट है। हैरानी की बात यह है कि ये हिंसक हैं। यह **मूंगा** है, आजकल गरम समुद्रों में जो मूंगा होता है, उसका प्राचीन संबंधी।

सहसा पानी में हलचल होती है। काई का सतून उठता है। कलियां और सेब तितर-बितर हो जाते हैं। समुद्रों का लुटेरा **केकड़ा-बिच्छू** मंद मछली पर टूटा है और चंगुल में शिकार को दबाकर गायब हो गया है। जल शांत हो जाता है। काई अपने स्थान पर जम जाती है। फिर से जलगत बगीचे में शांति छा जाती है।

जैली जैसे विशाल छत्रिक (मेडूसा) प्रायः वैसे ही थे, जैसे अब हैं।
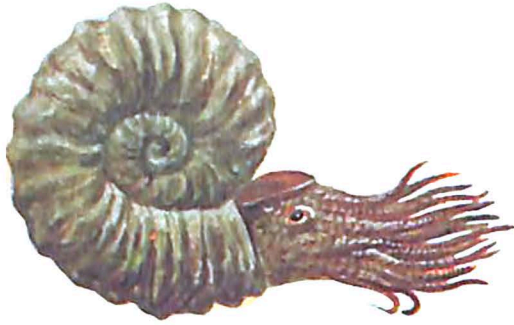
आधुनिक अष्टभुजों और समुद्रफेनियों का संबंधी शंखी अष्टभुज।

ट्राइलोबाइट केकड़े का दूर का संबंधी था। ट्राइलोबाइट छोटे और बड़े होते थे; बिल्कुल अंधे भी और ऐसे भी जिनकी आंखें लंबी टहनियों जैसी भुजाओं पर होती थीं।

मछलियों के बिना समुद्र

५५ करोड़ साल पहले

पानी खौलता है, कलकल करता है।

चीमड़ चंगुल और मज़बूत चोंच खपचों वाले किसी बड़े से लोंदे को पकड़े रखने की कोशिश कर रहे हैं। प्राचीन सागर के स्वामी **शंखी अष्टभुज** का केकड़े के प्राचीन संबंधी **ट्राइलोबाइट** से मुकाबला हो रहा है। ट्राइलोबाइट कभी भी शंखी अष्टभुज पर न टूटता, क्योंकि वह छोटे-छोटे जीवों का ही शिकार करता है। लंबे मज़बूत शंख को वह नहीं कुचल सकता था, न ही शक्तिशाली भुजाओं का सामना कर सकता था या चोंच के निर्मम वार सह सकता था। पर क्या करता, उसे काई में दुबकने में ज़रा सी देर हो गई, सो अब दुश्मन से टक्कर लेनी पड़ रही है। पर ट्राइलोबाइट अपनी रक्षा कैसे करे, उसका उदर तो नरम है? हां, वह सिमटकर गोला बन जाये, तो उसकी कवचदार पीठ ही शत्रु की ओर होगी। ट्राइलोबाइट ऐसे ही करता है। शांखी अष्टभुज हर तरह से ट्राइलोबाइट को मारने की कोशिश करता है। पर उसकी एक नहीं चलती। ट्राइलोबाइट उसके लिए बहुत बड़ा है। आखिर शंखी अष्टभुज थक जाता है, उसकी भुजाओं की पकड़ ढीली हो जाती है और ट्राइलोबाइट काई में खिसक जाता है, वहां कुंडली खोलकर वह फट से काई में गहरा दुबक जाता है। बस, अब ढूंढ़ते रहो! शंखी अष्टभुज इधर-उधर देखता रहता है, वहां चक्कर लगाता रहता है और आखिर चला जाता है। फिर से सन्नाटा छा जाता है। ऊपर सतह के पास छत्रिक डोलते रहते हैं और तले पर प्राचीन स्पंजों और सुंदर अक्टीनियमों के बीच तारामीनें चलती रहती हैं।
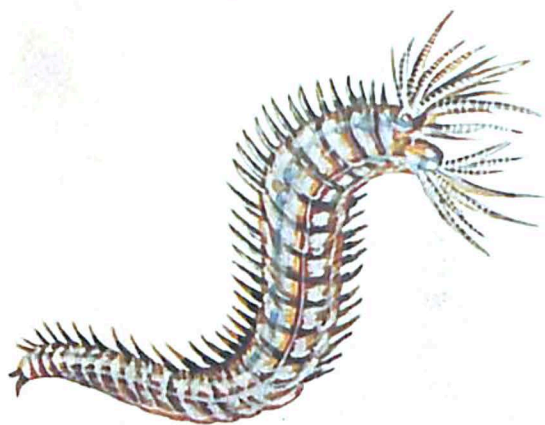
वह अब स्वयं चल सकता था।

सूक्ष्म जलीय पादप पहली हरी वनस्पतियां थे।

पारदर्शी, किंतु सजीव पिंड।

आदि जीवन युग

५७–३२० करोड़ साल पहले

आदि जीवन युग जीवों के इतिहास में सबसे लंबा और रहस्यमय युग है। उस सुदूर अतीत में पृथ्वी का स्वरूप विकाल था। कभी यहां और कभी वहां ज्वालामुखी फटते थे, ज़मीन में पड़ी दरारो से लावा की अग्निल धाराएं निकलती थीं और असीम उजाड़ में बहती थीं। लेकिन महासागर में जहां जल गुनगुना था और खारा नहीं था, वहां जीवन प्रकट हो गया था। सतह के पास सूरज की गरम किरणों में असंख्य पारदर्शी पिंडों के झुंड तैरते थे। ये पिंड इतने छोटे थे कि इन्हें सूक्ष्मदर्शी में ही देखना संभव होता। लहरें इन्हें तट पर ला फेंकतीं और धाराएं महासागर की गहराई में ले जातीं। और ये थक्के अरबों की संख्या में मरते। लेकिन जीवन कभी भी एक स्थान पर रुका नहीं रहा। अरबों वर्ष बीते और इन पिंडों में रहस्यमय परिवर्तन आये। इनमें से कुछ एक दूसरे से जुड़ गये और ऐसे जीव बन गये जो एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न थे। इनमें से कुछ शांत जीवन चाहते थे। ये तले पर बैठ गये और उससे जुड़ गये। इनसे वनस्पतियों का विकास हुआ। कुछ जीव समुद्र में ही भटकते रहे। इनमें से कुछ ने शंखरूपी घर बना लिया और मोलस्क यानी मृदुकवची बन गये। कुछ ने तेज़ी से चलना सीख लिया। उनके लिए यह बहुत महत्त्वपूर्ण सिद्ध हुआ। वे लहरों का खिलौना नहीं रहे, अब वे प्रवाह से जूझ सकते थे और अपने शिकार को पकड़ सकते थे। पृथ्वी पर जितने भी पशु हुए हैं और अब भी हैं उन सबकी उत्पत्ति इन्हीं से हुई।